महाशिवरात्रि

कश्मीरी पद्धति की विशेषता

त्रिलोकी नाथ पण्डित
'वानप्रस्थी'

प्रकाशन प्रभाग
संजीवनी शारदा केन्द्र
आनन्दनगर, बोडी, जम्मू

ॐ

महा शिवरात्रि
कश्मीरी पद्धत्ति की विशेषता

लेखक :-

त्रिलोकी नाथ पण्डित

“वानप्रस्थी”

एम० ए० (हिन्दी+ संस्कृत) बी० एड०

प्रकाशक

संजीवनी शारदा केन्द्र

आनन्दनगर, बोडी, जम्मू

प्रकाशक
प्रकाशन प्रभाग
संजीवनी शारदा केन्द्र
आनन्दनगर, बोडी, जम्मू-180 002
दूमरभाष :- 2501480

संस्करण प्रथम 2008

संख्या : 500
मूल्य 20/=

आमुख

ॐ नमो ब्रह्मदिभ्यो ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय कर्तृभ्यों वंश ऋषिभ्यो नमो महद्भ्यो गुरुभ्यः।।

संजीवनी शारदा केन्द्र के तत्त्वावधान में प्रति वर्ष की भाँति सामूहिक शिवरात्रि का त्यौहार दिनांक १५–०२–२००४ को श्रद्धा भक्तिपूर्वक मनाया गया। इन पंक्तियों के लेखक को मुख्य वक्ता के रूप में शिवरात्रि से संबंधित कश्मीरी पद्धति के महत्त्व पर प्रकाश डालने के लिए कहा गया था। कुछ श्रोताओं को इस में कुछ बातें अच्छी लगीं। उनके अनुरोध पर उस भाषण को लिखित रूप में तैयार किया गया। परन्तु इस कार्य में कुछ समय लग गया, तब तक वितस्ता से बहुत जल प्रवाह हो चुका था। इस क़ारण से अपने सहयोगियों ने इसे परिष्कृत रूप में पुस्तकाकार देने का परामर्श दिया। यह परामर्श लेखक को समयानुकूल भी लगा और सुविधाजनक भी, यद्यपि इस पर नए परिश्रम क़ी आवश्यकता भी पडी। परिणाम स्परूप इस पुस्तक़ का निर्माण हुआ। कैसा हुआ, इसका आकलन तो सहृदय विद्वान और पाठकवृन्द ही कर सकते हैं। अपनी ओर से जो कुछ भी बन सका, शिव–प्रसाद के रूप में विनम्र भावना से प्रास्तुत किया जा रहा है।

ॐ ! शान्ति !!
महाशिवरात्रि
युगाब्ध ५१०६
तदनुसार ५–३–२००८

विनीत :–

लेखक

महाशिवरात्रि हिन्दुओं के प्रमुख त्यौहारों में एक विशेष त्यौहार भारत भर में माना जाता है। परन्तु कश्मीरी हिन्दुओं के लिए तो यह सर्वोत्कृष्ट त्यौहार माना जाता है। शिवमत का प्रादुर्भाव मुख्य रूप से कश्मीर में ही हुआ और वहीं पर पराकाष्टा को पहुँच गया। स्वनामधन्य शैवाचार्य कश्मीर में ही जन्मे और इस दर्शन को परवान चढ़ाया। 'शिवरात्रि' नाम की शब्दरचना से ही प्रतीत होता है कि यह मुख्य रूप से रात्रि का त्यौहार है। सम्पूर्ण देश में, और विदेशों में भी इसे रात्रिकाल में मनाते हैं। व्रत–उपवास रखना, मन्दिरों में पूजा–पाठ के लिए जाना, जप–तप करना, दान–पुण्य करना तथा अभ्यागतों को खिलाना–पिलाना------ इसी रूप में देशभर में इस त्यौहार को मनाया जाता है। परन्तु कश्मीरी पद्धति इससे भिन्न प्रकार की है। यहाँ यह मन्दिरों का नहीं, घर–घर का त्यौहार है। और प्रयत्न किया जाता है कि घर के सभी सदस्य दूर–समीप सभी स्थानों से घर पर एक बार एकत्र हो जाएँ और सामूहिक रूप से इस महत्त्वपूर्ण त्यौहार को मनाएँ।

त्यौहार मनाने की दृष्टि से भी एक मुख्य भेद है। जहाँ देशभर में यह त्यौहार एक या दो दिन का होता है, वहाँ कश्मीरी हिन्दुओं में यह तीन सप्ताह या कम से कम दो सप्ताह का होता है। होरा अष्टमी से लेकर तैलअष्टमी तक इसको मनाया जाता है। जितना महत्त्वपूर्ण धार्मिक पहलू है, उतना ही महत्त्वपूर्ण इसका सामाजिक पहलू भी है। दोनों पहलू इसके समानरूप से महत्त्वपूर्ण हैं। ये एक दूसरे के पूरक हैं। परन्तु आजकल यह सामाजिक त्यौहार ही बनता जा रहा है, इसका धार्मिक रूप गौण हो रहा है। मनीषियों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को इसकी ओर ध्यान देना चाहिए और समाज में पुनर्जागरण लाना चाहिए। 'धर्म' शब्द की व्याख्या करते हुए सुविख्यात विद्वान ऋषि कणाद ने दोनों पहलुओं को समान रूप से महत्वपूर्ण माना है-----------यतोंभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।"

इस पर्व का मुख्य देवता है भगवान शंकर। शंकर का अर्थ है, व्याकरण की दृष्टि से 'कल्याणकारी'------- शं करोतीति शंकरः। कल्याण क्या होता है, इस बात को समझने में भी लोगों में बुद्धि भेद है। कल्याण भी तीन प्रकार का होता है – भौतिक, दैविक और अध्यात्मिक। सभी प्रकार के कल्याण बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु अध्यात्मिक कल्याण ही वास्तविक कल्याण है। इसी के साथ यह बात भी समझनी चाहिए कि अध्यात्मिक कल्याण भौतिक और दैविक कल्याण पर ही निर्भर करता है।

शिवरात्रि मूल रूप से रात्रि का ही त्यौहार है। यह आराधना,

साधना और सिद्धिप्राप्ति का त्यौहार है। रात्रि का समय इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए सहज और सुगम है। यजुर्वेद के शिवसूक्त का पहला ही श्लोक है :–

यज्जाग्रतो दूरमेदुति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति, दूरँगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

मन को वश में करके ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं। यह मन जाग्रत अवस्था में माया से मिलकर दूर–दूर तक चला जाता है और सुप्तावस्था में अपने लक्ष्य के समीप पहुँच जाता है। उस समय उसे लक्ष्य तक सुगमता से पहुँचाया जा सकता है। इसी कारण से योग साधना की दृष्टि से रात्रि का समय उपयुक्त माना जाता है। कश्मीरी पण्डित समाज मूल रूप से आध्यात्मिक उन्नतिरत समाज है। कश्यप ऋषि के सत्प्रयत्नों से ही सतीसर सुन्दरघाटी में परिवर्तित हुआ और उन्हों ने ही सरस्वती नदी के तटों पर बसने वाले विद्वान और साधनारत ब्राह्मणों को लाकर इस घाटी में बसाया। इसी कारण से सभी कश्मीरी पण्डित "सारस्वत ब्राह्मण" कहलाते हैं। यह बात इतिहास सिद्ध है।

कश्मीर घाटी शीत काल में हिमपात के कारण देश के अन्य भागों से कट जाती थी। भीतरी मार्ग भी अवरूद्ध हो जाते थे। इस कारण प्राकृतिक दृष्टि से प्रचुर समय मिल जाता था। धर्मप्राण जनता इस समय को व्यर्थ नहीं गवाँते थे। यह समय वे साधना में लगाते थे और आध्यात्मिक उन्नति में अग्रसर होते थे। यूँ तो प्रत्येक रात्रि साधना की दृष्टि से उपयुक्त है परंतु फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी रात्रि को ही शिव रात्रि क्यों मानते है, इसका कारण भी हम इसी प्रसंग में आगे चल कर देखेंगे।

कश्मीरी पद्धति से यह त्यौहार मनाने में हमें कुछ विशेष सामग्री की आवश्यकता होती है और विशेष प्रकार का पूजन किया जाता है जो देशभर में और कहीं भी नहीं होता है। इसके साथ कुछ विशेष शब्द भी जुड़े हुए है। अब हम इन्हीं पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करेंगे ताकि इस पद्धति की विशेषता समझ में आ जाए। ये शब्द इस प्रकार हैं:– हेरथ, वटुक, भैरव, जल–कुम्भ, सञपतुल, और नैवेद्य रूप में अखरोट। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कश्मीरी पद्धति से यह केवल शिव–शक्ति का ही पूजन नहीं होता है, अपितु सम्पूर्ण शिव परिवार का पूजन। धार्मिक कारणों के साथ–साथ इसके सामाजिक और ऐतिहासिक कारण भी हैं, इन पर भी दृष्टि –पात करना आवश्यक है।

सब से पहला शब्द आता हैं 'हेरथ'। कश्मीरी भाषा में यह शब्द कहाँ से आया, इस पर हम विचार करने का प्रयत्न करेंगे। कुछ विद्वान 'हेरथ' शब्द हररात्रि का अपभ्रंश रूप ही मानते हैं। व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत शब्द हररात्रि का प्राकृत रूप हररात बन जाता है और इसी का अपभ्रंश रूप हेरथ बन जाता है। दूसरे विद्वान 'हेरथ' के शिवरात्रि का ही कश्मीरी पर्याय रूप मानते हैं। भाषा विज्ञान के जिन नियमों के आधार पर हररात्रि हेरथ बन जाती है उन्हीं नियमों के आधार पर शिवरात्रि शब्द 'शेरथ' बन जाता है। भाषाओं का जब हम तुलनात्मक, अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि संस्कृत के 'श' या 'ष' वर्ण की ध्वनि कश्मीरी भाषा में 'ह' की ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। यथा संस्कृत भाषा के शतम् को कश्मीरी में 'हथ' कहते हैं। इसी प्रकार पंच षष्टी 'पॅच हॉठ' सतषष्ठी को सत हॉठ और शशुर को ह्युहुर बोलते हैं। इस नियम के अनुसार शेरथ का हेरथ में परिवर्तित होना नियमानुसार शुद्ध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'हेरथ' शब्द हररात्रि से भी बनता है और शिवरात्रि शब्द से भी। अब् प्रश्न उठता है कि शताब्दियों से कश्मीरी समाज हररात्रि मनाता है या शिवरात्रि? किसी परिणाम पर पहुँचने से पहले हमें इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ ढूँढना पडेगा और साथ ही साथ प्रचलित पूजा पद्धति पर भी विचार करना होगा।

'हर' शब्द व्याकरण की दृष्टि से 'हृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– हरण करना, छीन लेना, दूर करना या लूट लेना। 'शिव' शब्द शं धातु से बना है, जिसका अर्थ है – कल्याण, मंगल, कुशल–क्षेम। शं धातु सकारात्मक (Positive) है और 'हृ' धातु नकारात्मक (Negative) 'हर' रूप में हम महादेव से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे दुर्गुणों, दुराचारों और दुर्भावनाओं को दूर करें। एक शिव प्रार्थना में हम कहते हैं :– "शिव शंकर"। शिव शंकर।। हर में हरदुरितम्।" हर रात्रि शब्द कुछ तान्त्रिक ग्रन्थों में अवश्य देखने को मिलता है, परन्तु शिवरात्रि के पूजाग्रन्थ जो बहुत समय से पूरे समाज में प्रचलित हैं, उनमें हररात्रि शब्द ढूँढनें पर भी कहीं नहीं मिलता है। हर स्थान पर 'शिवरात्रि' शब्द ही दृष्टिगोचर होता है। जीवादान करते समय ही पढा जाता है –

"कालरात्रि, ताल रात्रि, राज्ञिरात्रि, शिवरात्रि"

समस्त शिवरात्रिदेवताभ्यः जीवादानं परिकल्पयामि नमः।"

और फिर इसके बाद कम से कम पाँच छः बार शिवरात्रि शब्द दुहराया जाता है जब हम धूप–दीप, पाद्य–अर्घ्य, स्नान, आसन नैवेद्य प्रदान करते हैं।

तांत्रिक पूजा पद्धति व्यक्तिगत पूजा है, सामूहिक रूप से ऐसा पूजन करने का विधान नहीं है। इस पूजा का एक मात्र लक्ष्य कुछ अप्राकृतिक शक्तितयों को प्राप्त करना होता है, जिस से कोई व्यक्ति अपनी सुख–सम्पति और ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है। यह सकाम पूजा है, जिस का फल प्राप्त करने के पश्चात समाप्त हो जाता है।

इसके विपरीत वैदिक पद्धति की पूजा निष्काम पूजा है जो परमात्म–प्राप्ति में सहायक होती है। तान्त्रिक पूजा में अन्य कुछ प्राणियों पर नियन्त्रण प्राप्त करके उनको अपने प्रयोग में लाया जा सकता है, परन्तु वैदिक पूजा में ऐसी कोई भी स्वार्थ सिद्धि की प्राप्ति का कोई अर्थ ही नहीं, क्योंकि वहाँ स्पष्ट निर्देश दिया गया कि सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से ही देखना चाहिए – मित्रस्य चक्षुषा सर्वानि भूतानि समीक्षे" – यजुर्वेद

गरुड़ पुराण, शिव पूराण और याज्ञवलक्य स्मृति में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है – "व्यवहारे तु वैदिकः"। वहाँ अलग अलग पूजा पद्धतियों का वर्णन करने के बाद कहा गया है कि व्यवहार में वैदिक पद्धति को ही लाना चाहिए।

उपरोक्त सन्दर्भो से सिद्ध होता है कि हम जो शिवरात्रि मनाते हैं वह केवलमात्र वैदिक सिद्धांत के आधार पर ही है। अतः हम कह सकते हैं कि "हेरथ" जो हम मनाते हैं, वह शिवरात्रि ही है।

वटुक :– दूसरा शब्द है 'वटुक'। अपनी भाषा में शिवरात्रि पूजा को हम "वटुक–भरूण" भी कहते हैं। वटुक शब्द के दो अर्थ हैं, एक अर्थ है जलकुम्भ से उत्पन्न हुआ बालक और दूसरा अर्थ है – जमा करना, एकत्रित करना या समेटना। पहले शब्द का स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ एक पौराणिक घटना का वर्णन करना युक्ति–युक्त लगता है।

एक बार जगदम्बा पार्वती एकांत स्थान में अपनी सखियों के साथ जल विहार कर रहीं थी। उसी समय जगत्पिता महादेव को भी कौतुक क्रीडा करने की इच्छा प्रकट हुई। उन्होनें एक भयानक भैरव का रूप धारण किया और चले पार्वती जी के पास क्रीडा करने। माता ने जब उस भैरव को दूर से आते देखा तो घबराहट में उनकी दृष्टि पास में रखे हुए दो जल कुम्भों पर पड़ी। उनकी आलौकिक मानसिक शक्ति से उन दोनों पात्रों में से दो बहादुर बालकों की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने तत्काल ही खडे होकर माता से आज्ञा देने के लिए प्रार्थना की। माता पार्वती उनके विनम्र स्वभाव से प्रसन्न हुई और उन्हें आज्ञा दी की मुख्य द्वार पर रहकर किसी भी आगन्तुक को

भीतर प्रवेश करने से मना करना। कुछ देर के बाद वह भैरव भीतर प्रविष्ट होने की चेष्टा करने लगा। उन दोनों बालकों ने उसे बलपूर्वक रोक लिया। कुछ वाद–विवाद हाने के उपरान्त वह भैरव वहाँ अन्तर्धान हो गया। यह सब जानकर माता उन दोनों बालकों पर प्रसन्न हुई और उन दोनो को आशीर्वाद पूर्वक वर दिया कि शिवरात्रि पर्व पर शिव–शक्ति के पूजन के अवसर पर इन दोनों बालकों का भी पूजा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा। इन दोनों बालकों का नामकरण वटुक भैरव और रमण भैरव किया गया। कुछ लोग रमण भैरव को राम गुड भी कहते हैं। ये दोनों, शिवगणों में भी, महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहने हेतु, सम्ममिलित किए गए। शिवरात्रि के अवसर पर शिव परिवार के पूजन के समय पर आजतक इन दोनों बालकों की भी विशेष पूजा की जाती है। और दो जलकुम्भों के रूप में इन दोनों मातृभक्त बालकों की भी उपस्थिति दर्शायी जाती है। बाद में माता ने जब विचार किया कि यह भैरव कौन था जिसने आज्ञा पाए बगैर ही उनके प्रकोष्ट में प्रवेश करने का दु:साहस किया उस ने योगबल से ज्ञान दृष्टि के द्वारा देखा कि वह भैरव और कोई नहीं, स्वंय क्रीडा करने की इच्छा से शिवजी ही थे। अतः तब से शिवरात्रि पूजा के अवसर पर भैरव पूजन का भी प्रचलन हो गया।

'वटुक' शब्द का दूसरा अर्थ है – जमा करना समेटना, एकत्रित करना। कशमीरी भाषा में भी, जो मुख्य रूप से संस्कृत भाषा का ही तत्सम और तद्भव रूप है, इस शब्द को "वटुन" कहते हैं। सब प्रकार की पूजा सामग्री को एकत्र करना और विशेष रीति से सजाना–संवारना 'वटुक–भरना' कहलाता है। और सम्पूर्ण, शिव परिवार की पूजा को 'वटक–पूजा' कहते हैं।

भैरव :– भैरव शब्द 'भी' धातु से बना है जिसका अर्थ है भयानक, भयदायक, खौफनाक। चूँकि शिव जी ने कौतुकवश एक नट की भांति स्वंय ही ऐसा रूप धारण किया था, अतः 'भैरव' और कोई नहीं, स्वंय शिव ही है। पता नहीं कुछ नासमझ लोगों ने देवादिदेव के इस भयानक रूप से किस किस भूत प्रेत की कल्पना की है।

भगवान शिव ने जिज्ञासा और कौतुकवश क्रीडा करने की इच्छा से एक और अनोखा खेल खेला, जिसका पुराणों में वर्णन है। इसी का वर्णन कश्मीरी काव्य की एक लीला में शिवलग्न के अन्तर्गत श्री कष्ण राजदान ने भी किया है :–

मैना रानी शिव जी से कहती हैं–

"कोतबा आहम च़ कुनुयजोन"

वलबा व्थरय पूचि लोंचि खिंञ।"

पार्वती से विवाह करने के समय पर शिवजी दुल्हा बनकर और बारात को पीछे छोड कर अकेले ही पर्वतराज के यहाँ पहुंच गए। यह देखकर वहाँ लोग हतप्रभ हो गए। मैना माता के तो होश ही उड गए। वह शिवजी से कहने लगी कि हम ने इतना पकवान बनाया है, यह कौन खाए गा ? कहते हैं कि शिव जी ने झोली में से दो छोटे सुन्दर बच्चों को निकाला और सासू माँ से प्रार्थना करने लगे कि इन छोटे बालकों को बहुत भूख लगी है, इन्हें कुछ खिलाइए, तब तक और लोग भी पहुँच जाएँगे। मैना उन दोनों बच्चों को साथ लेकर एक प्रकोष्ट में बिठा लाई और उन्हें भोजन की बडी थालियाँ सामने रखीं। वे कुछ ही क्षणों में थालियों का भोजन समाप्त करके फिर से माँगने लगे। बार बार भोजन परोसते परोसते सारा भोजन समाप्त हो गया परन्तु बच्चों की भूख शांत नहीं हुई। हताश होकर मैना शिवजी की शरण में चली गई और फिर थोडे ही भोजन से दोनों बच्चे तृप्त हो गए। इस कारण कश्मीरी भाषा में अत्यंत पेटूओं को भी "ख्यन भैरव" अर्थात् बहुत खाने वाला भैरव कहते हैं। कुछ लोगों की शिवरात्रि पूजा में ऐसी कल्पना की गई है कि भैरव शिवजी के संगी साथी न होकर कोई मांस भक्षी दुष्टात्मा, भूत प्रेत–पिशाच या आधुनिक जगत के यवन आतंकी हों। कहावत है कि व्यक्ति संगति से ही पहचाना जाता है। अतः सहज में ही समझा जा सकता है कि शिव जी के साथी कैसे होंगें ? वे तो शिव के आज्ञाकारी भक्त ही तो होंगें, चोर डाकू और उचक्के तो नहीं होंगे। मांसाहारी प्रेतात्माएँ तो कदापि नहीं होंगे। यदि उनमें किसी में कोई दुर्गुण–दुराचार भी होगा तो शिव सान्निध्य से वह अवश्य दूर होगा। यहाँ इस संसार में भी देखा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति में सिग्रेट तम्बाकू या शराब पीने की लत होगी तो वह भी अपने गुरुजनों और अन्य ज्येष्ठ–श्रेष्ठ लोगों को देखकर अपने उस दुर्गुण को छिपाने का भरपूर प्रयास करता हैं। अन्यथा उसे भर्त्सना का पात्र बनना पड़ेगा। भला बताइये जगतपिता देवादिदेव महादेव अपने संगी–साथियों को दुष्कर्मों पर चलने की अनुमति कैसे देंगे? भगवान शिव के सम्पर्क में आए हुए शिवगणों में ये दुर्व्यसन बने ही रहेंगें, ऐसी कल्पना मात्र करना भी शास्त्र विधि से वर्जित है और बौद्धिक दृष्टि से नितांत मूर्खता है। स्पष्ट बात को न समझते हुए फिर भी कुछ लोग जो मांसबलि चढाने के दुष्कर्म में जकड़े हुए हैं वे या तो अपनी बुद्धि से कुछ भी निरार्य नहीं लेते या तो फिर अपनी मांसाहारी दुर्वृत्ति को वैधानिक रूप देने का एक भौंडा प्रयास करने के

निष्फल कार्य में जानबूझ कर लगे हुए हैं। हमारा समाज तो पहले से ही दैवी उत्पातों से प्रपीडित है उसे और अधिक प्रताडित मत करिये अपितु उसका रक्षण करते हुए अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह कीजिए।

जल कुम्भ:- कश्मीरी पद्धति की शिव–रात्रि पूजन में यह प्रथा है कि विभिन्न जल–पात्रों में अखरोट डाल कर, पूर्णतया सजाकर शिव परिवार के रूप में पूजा की जाती है। जल कुम्भ का महत्त्व क्या है? कुम्भ रूप में ही क्यों पूजा की जाता है? ऐसे अनेकों प्रश्नों का उत्तर ढूँढने के लिए हमें शैवमत सम्बन्धी ग्रन्थों के साथ साथ सनातन धर्म के अध्यात्मिक दर्शनग्रन्थों का भी गहराई के साथ अध्ययन करना पडेगा। इस सारी सृष्टि को ब्रह्माण्ड कहते हैं। अण्डाकार इस सृष्टि में तीन चौथाई जल ही जल है, एक चौथाई ही स्थल तत्व है। इसका वर्णन ऋग्वेद में "पुरुष सूक्त" में मिलता है – "पादोस्य विश्वा भूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि।" आधुनिक वैज्ञानिक भी यह तथ्य मानते हैं कि जगत का चौथाई भाग ही स्थल रूप है, तीन भाग जल ही जल है। पात्रों में जब हम जल भरते हैं तो मात्रा भी लगभग इसी अनुपात में होती है। गोया इन जलपात्रों में हम परमात्म रूपी ब्रह्मॉंड की ही कल्पना करते हैं। इसी कारण देवादिदेव महादेव जो सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक हैं की जलकुंम्भ रूप में पूजा करने से बडकर और क्या पूजा हो सकती है।

दूसरा कारण साधना पक्ष का है। साधक की साधना तभी सिद्ध हो सकती है जब उसका मन और प्राण एकाकार हो जाए। योगसाधना करने वाले लोग यह बात सहज ही समझते हैं। कदाचित् इसी कारण से सुप्रसिद्ध सिद्ध भक्त कवि परमानन्द ने कश्मीरी पण्डितों को चेताया है, अपनी एक कश्मीरी लीला में जब वे कहते हैं –

"बटः। इकवट कर मन तय प्राण।" मन और प्राण एकाकार होने का सर्वोत्तम समय तब होता है जब मन और प्राण के अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा और सूर्य एक ही राशि में उपस्थित होते हैं। परन्तु यह विशेष उपयुक्त समय वर्षभर में केवल एक ही बार आता है जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों कुम्भ राशि में आते हैं। ज्योतिष शास्त्र की थोडी सी जानकारी रखने वाले लोग यह बात आसानी से समझ सकते हैं कि फाल्गुणा मास में सूर्य कुम्भ राशि में होता है और चन्द्रमा भी कृष्ण त्रयोदशी के दिन या उसके समीप ही कुम्भ राशि में आता है। यह योग साधना पक्ष की दृष्टि से तो सर्वोतम योग माना जाता है। साधना की दृष्टि से रात्रि का समय अधिक उपयुक्त होता है जब मन और प्राण प्राकृतिक तौर पर शान्त हो जाते हैं, और थोडी सी मेहनत करके उन्हें

लक्ष्य की ओर चलाया जा सकता है। भगवान कृष्ण भी श्री गीता में अर्जुन को यही बात समझाते हुए कहते हैं:–

"या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।"

इस का मुख्य कारण यजुर्वेद में कहा गया है कि जाग्रत अवस्था में मन और प्राण शक्ति जीवात्मा को लक्ष्य से दूर ले जाते हैं और सुप्तवस्था में लक्ष्य के समीप पहुँचा देते हैं :–

"यत् जाग्रतो दूरमुदेति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवैति।"

चूँकि कुम्भ ब्रह्मण्ड का ही प्रतीक है, इसकारण से भी कुम्भ रूपी जलपात्रों में शिव परिवार का आह्वान करके पूजा की जाती है, ताकि सारस्वत ब्राह्मण समाज इस तथ्य को न भूल कर इस दृष्टि से सदा जागृत रहें।

यह शरीर भी एक कुम्भ ही है। यह प्रसिद्ध कहावत है "जो कुम्भ में है, वही ब्रह्माण्ड में भी है।" अर्थात यह शरीर तो एक छोटा ब्रह्माण्ड ही तो है। शरीर तब ही नियंत्रण में रह सकता है जब मन पर नियन्त्रण कर लिया जाए। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है – 'चन्द्रमा मनसो जात् ...." –पुरुषसूक्त

इसी कारण जन्म कुण्डली में यदि चन्द्रमा अनुकूल हो तो मनुष्य उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सकता है, ऐसा मनीषी और ज्योतिषी कहते हैं। 'कबीर' ने भी अपने एक दोहे में कहा है–

"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत,
कह कबीर प्रभु पाइए मन ही की परतीत।।"

मन पर नियन्त्रण पाए विना किसी भी इन्द्रिय को निगृहीत नहीं किया जा सकता। योगी लोग इसी कारण इस अवसर का अर्थात "शिवरात्रि" का भरपूर उपयोग करते हैं। साल भर में यह अनुकूल अवसर केवल एक बार ही आता है। अतः सहज ही में इसके बहुमूल्य होने का अनुमान लगाया जा सकता है। इस अवसर को यूँ ही गँवा देना या मौज–मस्ती या अपवित्र चीजों के भक्षण में व्यर्थ गवाँना कितने दुर्भाग्य की बात है। बुद्धिमानों को इस तथ्य को सदा ध्यान में रखना चाहिए

सञ्पतुलः- सञपतुल का आकार शिवलिंग के समान ही होता है, और शिवलिंग का आकार ब्रह्मण्ड का ही लघु आकार है। एक पौराणिक कथा के अनुसार जब सदाशिव अर्धरात्रि के समय एक ज्योतिलिंग में प्रकट हुए थे तो उसका आकार भी इसी के समान था। द्वादश ज्योतिर्लिंग सब समान आकार के हैं, ऐसा शिवभक्त भी कहते हैं और शैव शास्त्रो का भी वर्णन है। 'पोतुल'

कश्मीरी भाषा में किसी भी ठोस मूर्ति को कहते हैं। पूजा में काम आने की मूर्ति को पोतुल कहते हैं। सनातन धर्म में निराकार देवादिदेव का पूजन आस्तिकजन धातु–मूर्ति के साकाररूप में करते हैं। ''सञ'' शून्य का अपभ्रंश है। बौद्ध मत इसी शून्य वाद पर आधारित है। कुछ कश्मीरी सूफी कवियों ने परमात्मा का अंतिम रूप शून्य ही माना है। एक कश्मीरी सूफी कवि ने अपना कवि उपनाम भी ''केहन्'' अर्थात शून्य ही रखा है।
वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म का मूल रूप निराकार है। प्रारंभिक साधक साकार का अवलम्बन तो करते हैं परन्तु आध्यत्मिक उन्नति पर पहुंचकर अन्ततः निराकार पर ही पहुँचना होता है। यह निराकार ब्रह्म ही तो ''सञपतुल'' है। इसी कारण शिवरात्रि के अवसर पर महादेव का पूजन इसी रूप में किया जाता है। अतः ''सञपतुल'' शून्याकार शिवमूर्ति का ही दूसरा नाम है। कश्मीरी भाषा में ''सञ'' देने का अर्थ है पात्रों को जल पूरित करना। कश्मीरी घरों में पवित्र पाकशाला में ''सञवारियाँ'' रखने का अभी तक प्रचलन है जिन्हें घर की कोई महिला स्नान के उपरान्त सब से पहले ताज़ा जल से भरती है। प्रत्येक प्रकार के कश्मीरी पूजन में सञवारियों का होना आवश्यक है, जिसके प्रतीक के रूप में दो छोटे पात्र रखे जाते हैं। यह दो वारियाँ 'मातृकाओं' का रूप माना जाता है। 'सञपतुल' आकार के शिवलिंगों का ही प्रत्येक शिव मन्दिर में पूजन होता है। यही सञपतुल का शिवरात्रि पूजन में महत्त्व है।

नैवेद्य के रूप में अखरोट

लोगों की सामान्य धारणा यही होती है कि जलवायु के अनुसार जिस स्थान में और जिस ऋतु में जो कुछ भी प्राप्त होता है, वही 'नैवेद्य रूप' में उस स्थान पर पूजा के कार्य में भी प्रयुक्त होता है। अखरोट के विषय में भी यह धारणा किसी अंश में ठीक है। फाल्गुण मास में, जब कश्मीर घाटी बर्फ से ढकी रहती है तो खुश्क मेवे के अतिरिक्त और कोई मेवा प्राप्त नहीं होता है। और फिर यह नैवेद्य पूजा के बाद बहुत समय तक रखना पड़ता है ताकि सब इष्ट बन्धुओं तक पहुँचाया जा सके। अखरोट इस कसौटी पर खरा उतरता है अतः नैवेद्य के रूप में अखरोट का ही चयन किया गया। परन्तु बात यहीं तक सीमित नहीं है क्योंकि यदि मात्र यह ही कारण होता तो दूसरा खुश्क मेवा बादाम भी काम में लाया जा सकता था, परन्तु ऐसा कुछ नहीं किया गया। यद्यपि बादाम अखरोट से अधिक गुणवर्धक और आयुर्वेदिक दृष्टि से लाभदायक भी है और कश्मीर में प्रचुर मात्रा में पाया भी जाता है।

अतः अखरोट के चयन में कुछ और भी कारण है, जिसे ज़ानने का हम प्रयत्न करेंगे।

प्रथम हम अखरोट के आकार और रचना पर बात करेंगे। अखरोट अण्डाकार गोल होता है। ऊपरी मोटा छिलका तोड़ने पर भीतर चार समान आकार की गिरियां निकलती हैं। दो दो गिरियों के बीच में एक पतला छिलका होता है जिसके साथ ये चारों गिरियां सँलग्न (जुडी) होती है। अब यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो हमें लगेगा कि अखरोट आकार से एक छोटा ब्रह्माण्ड ही है जो सम्पूर्ण मानव जीवन का प्रतीक है। सनातन धर्म के दर्शन की दृष्टि से मानव जीवन में भी चार अवस्थाएं होती हैं जागृत, स्वपन्न, सुषुप्ति और तुरीय। चार आश्रम होते हैं, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार वर्ण होते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्श शूद्र शतवर्ष की मानव की आयु को भी पचीस वर्ष के चार भागों में बाँटा गया है। ये सभी अवस्थाएँ परस्पर अन्योश्रित हैं, एक दूसरे की पूरक हैं और समान रूप से महत्वपूर्ण भी हैं। कोई छोटा, न बडा और न क़ोई उत्कृष्ट न कोई निकृष्ट। यह अखरोट इस सम्पूर्ण जीवन दर्शन को पग पग पर स्मरण कराता है, और किसी भ्रॉति को भी दूर कर सकता है। यह अखरोट हमें परमात्मा के चार पाद और चार वेदों का भी स्मरण कराता है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में जो सृष्टि रचना का तत्त्व और सृष्टि कारण समझाया गया है, उसकी ओर बार बार हमारा ध्यान आकृष्ट करता है :-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि, त्रिपादस्याऽ मृतं दिवि ....

इतना ही नहीं, इसी सूक्त में परमात्मा को सम्पूर्ण समाज रूप में दर्शाया गया है, इस गहन दर्शण को भी समझाने का प्रयत्न करता है –

ब्राह्माणोऽस्य मुखंमासीत्, बाहूराजन्य : कृतः

उरूतदस्य यद्वैश्य, पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।। यदि इस तथ्य को समझ जाएँगे, तो समाज में जो ऊँच नीच, उत्कृष्ट–निकृष्ट, पवित्र–अपवित्र की सामान्य स्तर की भावनाएँ उत्पन्न होती है, उन सब का निराकरण भी हो जाएगा।

मनुष्य जन्म प्राप्त करके हमें क्या करना है अखरोट इस बात की ओर संकेत भी स्पष्ट करता है

चार पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

चार शक्तितयाँ – इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चेतना

चार अवस्थाएँ – सत्, चित्त, आनंद , तुर्राय

चार प्रकार के खाद्य – भक्ष्य, भोज्य, चोष्य लेह्य

और चार प्रकार के तर्पण की याद दिलाता रहता है। इतना ही नहीं आत्म परमात्म मिलने के लिए जो चार मार्ग श्रुति ने दरशायें है, उन की स्मृति भी कराता रहता है। ये चार मार्ग हैं – ज्ञान योग, कर्मयोग राज योग और भक्ति योग। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधक नहीं। तथा सभी एक दूसरे पर अवलम्बित भी हैं। इन में किसी प्रकार का असंतुलन मानव जीवन को भी आंदोलित कर सकता है, जो किसी न किसी रूप में कुप्रभाव का कारण बन सकता है। उदाहरण के लिए वर्णाश्रम धर्म को ही लीजिए, जो व्यवहारिक दृष्टि से एक वरदान है। इसी कारण भगवान स्वंय गीता जी में कहते हैं –

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं, गुण कर्म विभागशः" परन्तु ज्यों ही मानव ने "गुण–कर्म विभागशः" के बदले 'जन्म–विभागशः' बनादिया तो यह वरदान भी अभिशाप बन गया। यही हाल प्रत्येक अवस्था का हो गया है। परन्तु अखरोट हमें सदा ही वास्तविक तथ्य की ओर आकृष्ट करता रहता है। यदि इन बातों की ओर हम ध्यान दें तो जीवन कितना आनंदमय बन सकता है। इस प्रसंग को यहीं समाप्त करने से पूर्व अखरोट का आयुर्वेदिक दृष्टि से भी परीक्षण करना पडेगा। अखरोट की तासीर गर्म–शुष्क है। जल में कुछ समय भिगोते ही इसकी शुष्कता दूर हो जाती है और फिर सेवन करने से यह अधिक शक्तिदायक, लाभकारी और गुणकारी हो जाता है, बिलकुल इसी प्रकार शुष्क जीवन को प्रेम जल में सींचने से जीवन अधिक आनन्दमय और सरस हो जाता है।

वैश्वदेवः- शास्त्र विधि के अनुसार देव पूजन के उपरान्त अपने इर्द–गिर्द सभी प्राणियों को तृप्त करना परमावश्यक है। साधारण भाषा में इसे ब्रह्म भोज कहते हैं। इसका अर्थ है ब्रह्म अर्थात परमात्मा को भोजन देकर तृप्त करना। निराकार परमात्मा तो साकार रूप में यह सारा संसार ही है और संसार में जितने प्राणी रहते हैं उनकी गणना वेदों के चौरासी लाख निर्धारित की है। अर्थात इस सृष्टि में चौरासी लाख प्रकार के प्राणी है जिन को तृप्त करना ही वास्तविक ब्रह्मभोज हो जाता है। ये प्राणी मोटे तौर पर तीन प्रकार के गिनाए गए हैं– जलचर, थलचर और नभचर। दूसरे शब्दों में उन्हें स्थावर और जंगम भी कहते हैं। इन सब का संरक्षण और संवर्धन करना मनुष्य का कर्तव्य है। ऐसा करने पर ही मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी कहलाने योग्य बन जाता है। फारसी भाषा में इसे 'अशरफ–उल–मखलूकात' कहते है।

अशरफ अर्थात सर्वोत्तम गुणों वाला। इसके द्वारा किसी भी प्राणी का अहित नहीं होना चाहिए। यदि वह ऐसा पुनीत कार्य करता है तो परमात्मा या जगदम्बा का कृपा पात्र बन जाता है, इसी प्रकार जिस प्रकार सभी बच्चों का लालन–पालन करके प्रसन्न रखने से उनके माता–पिता भी प्रसन्न हो जाते हैं। इस काम को करने के लिए प्राचीन मनीषियों ने अपूर्व वैज्ञानिक मार्ग अविष्कृत किया जिसे बलि–वैश्वदेव कहते हैं। यह प्रकार से छोटा हवन ही होता है। भूमि पूजन के उपरान्त अग्नि में आहुतियाँ डाली जाती है। पहले अपने से उत्कृष्ट प्राणियों देव, ऋषि यक्ष गन्धर्व और श्रेष्ठ पितरों के नाम आहुतियाँ डाली जाती है, फिर अन्य प्राणियों के नाम पर डाली जाती है। भूमि पर दर्भ बिछाकर देवताओं ऋषियों, पितरों और अपने कुल के पूर्वजों के नाम अन्न जल देकर सन्तुष्ट किया जाता है फिर अपने निम्न स्तर के प्राणियों की तृप्ति के लिए अन्न–जल का दान किया जाता है। ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। इसके बगैर पूजन अधूरा माना जाता है। ऐसा करने से दर्शन और व्यवहार को, स्वार्थ और परमार्थ को तथा भौतिकता एवं अध्यात्मिकता को एक दूसरे के साथ जोड़ दिया जाता है। ऐसा करने पर ही कार्य की पूर्णता मानी जाती है और किसी लाभकारी फल की आशा की जाती है। यही तो प्रकृति का नियम है। विज्ञान पढने वाले छात्र जब तक Theory के बाद Practical न करें ज्ञान एकाँगी या अधूरा रह जाता है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष के मेल के बगैर सृष्टि की उत्पत्ति की सम्भावना नहीं बन सकती। ऐसे ही पूजा पाठ के बाद जब तक चारों प्रकार के तर्पण–समर्पण न किया जाए, तब तक कार्य अधूरा रह जाएगा और अधूरा कार्य कभी फलदायक नहीं बत सकता। धर्म शास्त्रों के अनुसार कोई भी धर्मकार्य तब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक न उसकी सभी दिशाओं में रहने वाले प्राणी– देवऋषि पितर और सामान्य प्राणी तृप्त नहीं होते। वैश्व देव तो सम्पूर्ण प्राणियों की तृप्ति का एक उत्तम तरीका है। इसके बाद ही जो कुछ घर में बचता है उसे हुतशेष कहते हैं और उसका सेवन करना अमृतपान करने के बराबर माना जाता है। यही सर्वोत्तम नैवेद्य है। गीता जी में भगवान अर्जुन को समझाते हैं कि सब को तृप्त किए बगैर केवल अपने ही लिए जो अन्न पकाया जाता है वह चोरी के अन्न के समान अपवित्र है। अब प्रश्न उठता है कि नाना प्रकार के प्राणियों की तृप्ति के लिए क्या समर्पण करना चाहिए? इस काम में क्या शस्त्र विधि का ध्यान रखना चाहिए, अथवा उन प्राणियों की अच्छी बुरी रूचि का ध्यान रखना चाहिए। कुछ लोग एक

पक्ष में बात करते हैं और कुछ दूसरे पक्ष में बात करके अपना मत प्रकट करते हैं। भारतीय समन्वयबाद सदा लोकत्रंतात्मक रहा है। परन्तु सब की बातें सुन कर और उन पर विचार करके उनके गुणा–दोषों पर दृष्टिपात किया जाता है। अन्त में किसी निर्णय पर पहूँच कर नीति बनाई जाती है और वह सब पर लागू होती है। इसी से अनेकता में एकता कायम रहती है। व्यवहार में भी हम अपने इष्ट–बन्धुओं को जब सामूहिक भोज पर बुलाते हैं तो सब को एक ही प्रकार का भोजन खिलाते हैं जो खिलाने योग्या होता है और उनकी व्यक्तिगत रूचियों का ध्यान नहीं करते, न कर ही सकते हैं। यदि अतिथियों में किसी की रूचि अफयून (अफीम) खाने की या शराब पीने की होती है, तो उनको सामूहिक भोज में ये चीजें थोडे ही पेश की जाती हैं? अपितु उन्हें परामर्श देते हैं कि उन्हें इन चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि ये हानिकारक है। इन का सेवन करने से उनका स्वास्थय बिगड सकता है। कल्याण उन्हीं चीजों के सेवन करने से होता है जो शास्त्र सम्मत भी हों और आयुर्वेदिक दृष्टि से उपयुक्त भी हों। दुष्परिणामवाली ऐसी अनुपयुक्त और अपवित्र वस्तुओं का पिण्डदान करना शास्त्र विधि से वर्जित है, क्योंकि ये सब अमंगलकारी होता है। और शास्त्रों के अनुसार अमंगलकारी वस्तुओं का भेंटकर्त्ता और भोक्ता–दोनों का पतन होता है। शास्त्रीय दृष्टि से वही कार्य या वस्तु पवित्र है जो हिंसा दोष से सर्वथा मुक्त हो। इस बात की साक्षी वेद–उनिषद् और श्री गीताजी देते हैं। भारतीय षटदर्शन इसी का प्रतिपादन करता है और अन्य भारतीय दर्शन – बौद्ध, जैन, शैव और शाक्त – भी इसी बात को मान्यता देते हैं। इन सब दर्शनों में किन्हीं बातों को लेकर बहुत मतभेद हैं, परन्तु एक बात में सभी सहमत हैं कि यम–नियम का पालन करना परमानश्यक है। क्योंकि यह तो नींव है, बुनियाद है। यदि नींव मजबूत हो तो उस पर किसी भी आकार का भवन निर्माण कर सकते हैं। यदि नींव ही कमजोर हो तो भवन निर्माण कैसे हो सकता है? याम पाँच बातों का पालन होता है – अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इस बात की विशेष चर्चा यहाँ इस कारण से करनी पड़ी क्योंकि कुछ लोग धार्मिक कृत्यों में भी मनमानी व्याख्या करके अपनी निजि कुरुचि का प्रतिपादन करते हैं, कभी रीति के नाम पर, कभी कुलाचार के नाम पर और कभी किसी महापुरुष भी किसी कुरुचि के नाम पर। ऐसा करके वे पुण्य के बदले पाप के भागी बन जाते हैं। भैरव भेंट के नाम पर कुछ लोग आमिष पदार्थों का भी उपयोग करते हैं, जैसे ये भैरव शिव–शंकर के संगी साथी और

आज्ञाकारी भक्त न होकर कोई भूत–प्रेत, यवन आतंकी पतित आत्माएं हों। और यदि इन में कोई पतित आत्मा होगी भी, तो क्या वह भगवान शिव के सत्संग मे सुधर नहीं जाएगी? गोस्वामी तुलसीदास 'रामचिरत मानस' में कहते हैं :–

'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई'

तो शंकर के सान्निध्य से बडकर और कौन सी सत्संगति हो सकती है? वैसे भी किसी पतित प्राणी को अपवित्र भेंट चढाने से सारस्वत ब्राह्मणों को कौन सी पवित्र सिद्धि हो सकती है? क्या हम उन पवित्र ऋषियों मुनियों के नाम पर कलंक तो नहीं लगाते हैं जिन का नाम गोत्र के रूप में हमारे नाम के साथ जुड़ा हुआ है? शास्त्र कहते हैं कि 'शव' दर्शन से अशैच लग जाता है और नहा धोकर ही इससे छुटकारा मिल जाता है। शव वह प्रत्येक शरीर बन जाता है जिस से प्राण तत्त्व निकल जाता है। चाहे खुद निकले या कोई और निकाले, शव शव ही रह जाता है। अब कृपया अनुमान लगाइए पूजा के स्थान पर जहाँ शव रखा जाए तो क्या वह पूजा का स्थान रह सकता है? आश्चर्य होता है कि बड़े बड़े विद्वान और धर्मात्मा कहलाने वाले लोग कुछ आश्रमों में अपने गुरुमहाराज के नाम पर आमिष पदार्थ का नैवेद्य तक बाँटते हैं। १६८२ ई० की बात है कि कश्मीर में हमारे समाज में ऐसी ही ज्वलन्त प्रश्न उठ खड़ा हुआ था कि मांस बलि चढ़ाना शास्त्र सम्मत है या वर्जित। भारतीय षड्दर्शन, बौद्ध–जैन और आर्य समाज के दर्शन तो स्पष्ट रूप से इसे वर्जित घोषित करते हैं, इस पर कोई शंका नहीं होती है। परन्तु शैव–शाक्त दर्शन के सम्बन्ध में हम तब तक कुछ कहने से हिचकिचाते थे। अतः इन पंक्तियों के लेखक ने देहाती हिंदू संगठन" के महामन्त्री के रूप में एक परिपत्र तैयार किया था और विद्ववानों–धर्माचार्यों को भेज कर मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना की थी। फिर एक पत्र तत्कालीन सुप्रसिद्ध शैवाचार्य और धुरन्धर विद्वान और संत स्वामी लक्ष्मण जी निशात आश्रम वाले की सेवा में भेजा गया। हमारे अहोभाग्य से स्वामी जी ने उत्तर देकर हमे कृतार्थ किया उन्होंने स्पष्ट रूप से उन विद्वानों की भर्तसना की थी जो प्राणि बली को किसी भी रूप में उचित ठहराते हैं। पत्र के अंत में स्पष्ट निर्देश दिया था–

"इत्यतः मैं हाथ उठाकर कहूँगा कि मांस –भक्षण सर्वथा निषिद्ध है और यह मांस–भक्षण की प्रथा समूल नष्ट होनी चाहिए।।ॐ।।

आपका सुहृत्त
लक्ष्मण जू
ईश्वर आश्रम

हष्टव्य, मानव धर्म का मूलमन्त्र अहिंसा पृष्ठ ६३-६५

क्या स्वामी लक्ष्मण जू के परामर्श और निर्देश को कोई नकारने का दुःसाहस कर सकता है?

वैश्वदेव याग में बलि प्रदान करते समय जो मन्त्र हम पढ़ते है। कम से कम उन का अर्थ ही जानने का प्रयत्न करना चाहिए। वहाँ मांसाहारी हिंस्र प्राणीयों – जैसे कुत्ते, बिल्ली कौवे इत्यादि – को बलि देते समय पढा जाता है कि – ''सौर–भेय्याः स्वर्ग हिता' ....

ऐन्द्र–वारूण, वायव्या याभ्या नैऋतिकाश्च ये वायसाः प्रतिग्रहणन्तु इमं पिण्ड मदो धृतम् काकेभ्यः अन्नं नमः श्वानौ दौ शाव शबलौ वैवस्बत कुलोदभवौ, ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ। श्वभ्यः श्वानकेभ्यः अन्नं नमः।''

अर्थात पिण्ड दान करने पर यह कामना करते है कि ये हिंस्र प्राणी हिंसा भाव रूपी वैर त्याग करके सबके साथ मित्रभाव से रहें। इस अवसर पर हमें शिव परिवार का आदर्श ही अपनाना चाहिए। शिव परिवार में शिव पार्वती, गणेश, कुमार, नंदी और अन्य शिवगण के अतिरिक्त सर्प, वृषभ, शेर, मयूर और मूषक भी तो होते हैं। सांसारिक दृष्टि से तो ये वाहन रूपी प्राणी एक दूसरे के शत्रु हैं परन्तु शिवसान्निध्य के कारण ये सभी वैरभाव त्यागकर मित्रभाव से परस्पर निवास करते हैं। यह रही निकृष्ट प्राणियों की बात। मनुष्य जैसे उत्कृष्ट प्राणियों को कैसे व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्णय तो आप स्वयं ही कर सकते हैं। ॐ।

अंत में आप सब का ध्यान एक महत्वपूर्ण बात की और आकर्षित करना चाहूँगा। देव पूजन में विभिन्न लोग विभिन्न रीति–रिवाजों को महत्त्व देते हैं, कुछ जप–तप पर बल देते हैं, कुछ व्रत–उपवासों को और कुछ लोग तो दान–भण्डारों को उत्तम मानते हैं इस विषय में लोग पूछते हैं कि कौन सा तरीका सर्वोत्तम है। इस बात पर केवल इतना ही कह सकते हैं कि जिस विधि से मन को 'शान्ति' मिलती है, वही तरीका सब से अच्छा है। इस अवसर पर हम शस्त्रोक्त बात की ओर आप सब का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। शैव–ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर वर्णन आता है – ''शिवो भूत्वा शिवं यजेत''।

अर्थात शिव पूजन की सर्वोत्तम विधि शिव बनने में है। तो क्या प्रत्येक व्यक्ति शिव बन जाएगा? और शिव बनना क्या है? इन्हीं ग्रन्थों में शिव बनने की व्याख्या भी की गई है। शिव बनने का अभिप्राय है शिव के गुणों को अर्जित करना और शिव के गुण क्या हैं? यदि हम गणना करने लगें तो वे इतने हैं कि उनकी गणना ही नहीं हो सकेगी। मोटे तौर पर हमें यहाँ कुछ विशेष गुणों की चर्चा करनी पडेगी।

निराकार शिव की जब हम साकार रूप में कल्पना करते हैं और उसी के अनुसार उनका चित्र बनाते हैं तो हम देखते हैं कि शिव के छः बडे लक्षण होते हैं :– त्र्यम्बक, चन्द्रमौलि, सर्पहारी, नीलकण्ठ गंगाधर तथा भस्मांगधारी। शिव के साकार रूप का ध्यान करते समय इन्हीं छः गुणों का स्मरण हो जाता है। इन का अर्थ कुछ पौराणिक घटनाओं के साथ भी जुडा हुआ है। यथा समुद्र मंथन के समय काल कूट विष को स्वंय पीकर सृष्टि का संरक्षण करना, सगर–पुत्रों का पुनरुजीवित करने के लिए गंगा जी को देव लोक से मर्त्यलोक में उतारते समय स्वयं प्रहार सहन करना, और दक्ष–प्रजापति के यज्ञ कुण्ड में सती का भस्म होना तथा शिवजी का विलाप करते हुए उसके भस्म को अंगों पर मलना। परन्तु ये इन प्रतीकों के भौतिक अर्थ है या दैविक अर्थ। वास्तव में इन सब प्रतीकों का अध्यातमिक अर्थ है इन सदगूणों को धारण करना जो इन शब्दों के साथ जुड़े हुए हैं अब हम इनकी कुछ संक्षेप में चर्चा करेंगे

१. त्र्यम्बक – का अर्थ है त्रिनेत्र धारी। तीसरा नेत्र सबके आज्ञा चक्र में प्रसुप्त रहता है। आस पास क्या हो रहा है, इसकी जानकारी रखना। यदि देश, धर्म या समाज पर किसी कारणवश कोई संकट उपस्थित हो जाए तो उस संकट का यथा शक्ति निवारण करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना तथा शिव भक्तों को अपना कर्तव्य धर्म समझ कर निबाना आदि चेष्टाओं की प्रेरणा त्र्यम्बक ही प्रदान करता है।

२. चन्द्र मौलि या चन्द्रशेखर उसको कहते हैं जिसके मस्तक पर चन्द्रमा हो। इसका अर्थ है सदा शीतलता, शांति और संतुलन को कायम रखना। संसार में कितनी ही विपरीत परिथितियाँ आ जाएँ तो भी उन का मुकाबला करते हुए इन तीनों गुणों को बनाए रखना कभी भी अशांत या असंतुलित नहीं होना।

३. सर्पहारी अर्थात विषधर को भी गले का हार बनाना। सम अवस्था में

स्थित रहकर दुर्भावनाओं का शमन करना। अपने सद्व्यवहार से शत्रुओं को भी राम करके उन्हे मित्र बनाना।

४. नीलकण्ठ का अर्थ है विषमताओं को देख या सुन कर, स्वंय ही उन के दष्प्रभावों को सहन करना और सर्व हित के हेतु अपने सर्वस्व त्याग देना। मन और ह्रदय को दुष्कर्मों के प्रभाव से अछूता रखना।

५. गंगाधर का अर्थ है – परोपकार के लिए सदा तत्पर रहना। सांसारिक भीषण प्रहारों को स्वंय सहना और दूसरों को केवल अमृतपान कराते रहना।

६. भस्मांगधारी – का अर्थ है त्यागमय भोग करना। सम्पूर्ण ऐश्वर्य होते हुए भी स्वंय साधारण जीवन व्यतीत करना तथा उन ऐश्वर्यों को परोपकार के लिए प्रयोग में लाना। ईशावास्य उपनिष्द में पहले ही शलोक में ऐसा ही निर्देश दिया गया है – ''ईशावास्यं इदं सर्व, यत् किंचित जगत्यां जगत्। तेनत्यक्तेन भुंजीथा, मागृदद् कस्य स्विद्धनम्।।''

सभी शिवभक्तों को सदा ही इन षड्गुणों को अर्जित करने के प्रयास में लगे रहना, मेरे विचार में **सर्वोत्तम शिवपूजा** है। यदि सब लोग इन सद्गुणों से विभूषित हो जाएँ तो यह संसार कितना सुखमय और शाँतिमय बन जायेगा। पूजा–पाठ, जप–तप और यज्ञ–याग करने के बाद भी यदि उपरोक्त सदूगुण प्राप्त न हो जाए, तो भला विचार कीजिए कि क्या प्राप्त हुआ? क्या ऐसा किए बगैर हम देवादिदेव महादेव और पराशक्ति जगदम्बा के कृपापात्र बन सकते हैं? शिव शक्ति का पावन पर्व प्रतिवर्ष हमें यही चेतावनी देता है। अतः हमें यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक शिव भक्त बनकर शिव के सच्चे अर्थों में कृपापात्र अवश्य बनना चाहिए। अब यदि हम इस महोत्सव की सामाजिक पद्धति की विशेषता पर भी चर्चा करेंगे तो उपयुक्त रहेगा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि कश्मीरी हिन्दु समाज में यह कम से कम एक पाक्षिक महोत्सव है। यह महोत्सव फाल्गुण कृष्ण पक्ष प्रथमा से ही प्रारंभ होता है। इस दिन निवासस्थान को स्चच्छ–साफ करके एक भव्य रूप दिया जाता है। कपडे साफ़ किए जाते है और पूजा स्थान को विशेष रूप से पवित्र किया जाता है। रात्रि का समय भजन–कीर्तन में लगाया जाता है ताकि ध र्मिक माहौल बन जाए। होरा अष्टमी को रात्रि जागरण विशेष मन्दिरों या आश्रमों में भी सामूहिक रूप से किया जाता है। कश्मीर में भी ऐसा हो रहा था और विस्थापन के बाद जम्मू–दिल्ली आदि अन्य स्थानों पर भी इस रीति को कायम रखा गया है। यह महोत्सव केवल व्यक्तिगत पर्व ही नहीं है अपितु

एक पारिवारिक पर्व भी है और सामाजिक पर्व भी है। इस रूप में इसे बनाए रखना हम सबका परम कर्तव्य भी है और समय की आवश्यकता भी है।

दशमी के दिन घर की महिलाएं अपने अपने मायके चली जाती हैं और वहाँ नहा धोकर नए वस्त्रों और 'अतगथ' के साथ उसी दिन या दूसरे दिन आर्शीवाद के साथ ससुराल आती हैं। ऐसा करना नव–विवाहित कन्याओं के लिए अधिक उत्साह वर्धक होता है और अपने प्रेमी–सम्बन्धियों के साथ सम्पर्क भी बना रहता है। परन्तु विस्थापन के बाद यह समाज बिखर गया और अपने इष्ट–जनो से बहुत दूर चला गया। ऐसी दशा में सम्भवतः मायके जाना और फिर ससुराल आना सबके लिए सुविधाजनक नहीं होगा। अतः कुछ संस्थानों का उन्हें जंगत्रय की भांति इसका भी प्रबन्ध करना चाहिए। वैसे तो समाज में इस ओर ध्यान दिया जा चुका है। जो मायके नहीं जा सकती वे तो पास पड़ोस में सबन्धियों के घर जाकर इस प्रथा का निर्वहन करती हैं।

शिव रात्रि से एक दिन पूर्व घर में एक छोटा या धार्मिक पर्व मनाया जाता है इसे कश्मीरी में ''वागुर'' भरना कहते हैं। यह काम घर की सब से ज्येष्ठ महिला करती है और इसका प्रसाद भी घर के सब जनों को खिलाया जाता है। यत्न यही किया जाता है कि घर के जो सदस्य कार्यवश दूर स्थानों पर रहते हैं, कम से कम वर्ष भर में एकत्र होकर 'वागुर भरने' तक घर पहुँच जाँए। और सामूहिक रूप से घर पर ही पर्व मनाएँ। इस प्रकार परिवार के सदस्यों का सामूहिक मिलाप करके यह त्यौहार उनमें नया प्रेम–व्यवहार और भाई चारे की भावना को सुदृढ़ करता है। शिवरात्रि का त्यौहार कैसे मनाया जाना चाहिए इस की विषद चर्चा तो पहले ही की जा चुकी है। इसके दूसरे दिन को 'सलाम' कहते हैं। इस दिन अपने मित्रों और पास पड़ोस में रहने वालों के साथ मिलकर बधाई संदेश दिए जाते हैं और बन्धुभाव को कायम रखा जाता है, इसका एक रोचक ऐतिहासिक कारण है। यवनों, मुगलों और अफगानियों की गुलामी में रहकर कश्मीरी पण्डित समाज ने शताब्दियों तक अनेकानेक कष्ट सहन किए हैं। इन का वर्णन करने से भी रोंगटे खडे हो जाते हैं। शासकों ने शासन के बल पर, तलवार के बल पर या अन्य प्रकार के दुष्चक्रों के बल पर सम्पूर्ण समाज को प्रताडित किया, नष्ट किया और मत–परिवर्तन पर विवश किया। जो शेष बच गए, उन्हें अपने धार्मिक त्यौहारों के मनाने पर प्रतिबन्ध लगाए गए। ऐसे ही जबार खान

नामक अफगान शासक ने आदेश दिया कि यह त्यौहार फाल्गुण के बदले आषाढ मास में मनाया जाए ताकि शिवरात्रि का महत्व भी समाप्त हो जाए और यह धारणा भी निराधार हो जाए कि इस त्यौहार पर वर्षा और हिमपात अवश्यम्भावी है। सहज धर्म का पालन करने वाले कश्मीरी पण्डितों को विवश होकर आषाढ़ के मास में ही यह पर्व मनाना पडा। वे सच्चे मन से महादेव के चरणों में नतमस्तक हो गए और देखते ही देखते आषाढ़ मास में भी जबरदस्त बर्फबारी हुई सारा फसल नष्ट हुआ और लोगों में हाहाकार मच गया। जबार खान के मतावलम्बी भी उसके विरूद्ध खड़े हो गए और तबाही का कारण उसे ही माना गया। फिर भयभीतावस्था में दुष्कर्मों के लिए क्षमा–याचना के हेतु पण्डितों के घरों में आये। लोग जबार खान की भर्तसना करने लगे और यह कहावत बन गई – "वुछतोन यि जबार जन्दः, हारस तिकोरुनवन्द": उन्हों ने श्रद्धावश वटुक नाथ के सामने क्षमा याचना की प्रार्थना की। इस कारण से इस दिन का नाम सलाण पड गया और प्रथा कायम रही।

अमावस्या के दिन वटुक–भैरव का विधिपूर्वक विर्सजन किया जाता है जिसको कश्मीरी में "वटुक–परमूजन" कहते हैं। इस धार्मिक कर्म को कश्मीर में दरिया या किसी नदी तट पर किया जाता था। कश्मीर से बाहर जहां नदियाँ नही हैं वहां किसी मन्दिर में या आंगन में किसी पानी के नलके के पास ही यह काम किया जाता है।

फिर प्रारम्भ होता है अखरोट रूपी शिवरात्रि नैवेद्य अपने हमसायों, मित्रों, बन्धुओं और विशेष रूप से लडकियों के ससुराल वालों तक पहुँचाना। कश्मीर में शीत काल में जब रास्ते बंद हो जाते थे तो इष्ट + बन्धुओं से पुनः सम्पर्क करने का यह एक सर्वोत्तम तरीका था। इस से पारस्परिक रिश्ते मजबूत हो जाते थे। इन दिनों पंचक भी होता है अतः नव विवाहिता पुत्री के ससुराल तक यह नैवेद्य पंचक समाप्त होने के बाद ही पहुँचाया जाता है। परन्तु किसी भी सूरत में यह नैवेद्य तैल आष्टमी अर्थात शुल्क अष्टमी से पहले पहले ही पहुँच जाना चाहिए। कश्मीर के वातावरण और कश्मीर से बाहर जम्मू, दिल्ली, चण्डीगढ, मुम्बई, नागपुर और ग्वालियर जैसे स्थानों के वातावरण में बहुत अन्तर है। अतः कुछ रीति–रिवाजों में अपनी सुख–सुविधा के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है, और यह आगामी पीढी के लिए कष्टप्रद न बन जाए, ऐसा परिवर्तन करना आवश्यक भी है और अवश्यं

भावी भी। समाज में कुछ अर्थहीन रीति रिवाज इस त्यौहार के साथ जोडे गए हैं, जो या तो अज्ञान के कारण जुड चुके हैं या किसी अंधविश्वास के कारण। इन को एकदम हिम्मत से काम लेकर बदलना चाहिए। शिवरात्रि के दिन कौन सी सब्जी बनाई जाए कौन सी नहीं, इसका त्यौहार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। सब्जियों में परिवर्तन करने से कोई अनिष्ट नहीं हो सकता, इस तार्किक बात को समझना चाहिए। यहाँ एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ। कि किस प्रकार हम ने मंगलमय त्यौहार को उपहास का कारण बनाया। श्रीनगर कश्मीर के एक प्रतिष्ठित घराने की रीति थी वटुक–परमोचन के बाद मिट्टी के घडे को रास्ते में ही फोड देना। जिन दिनों मैं महाविद्यालय में पढता था उन्हीं दिनों जब मुझे इस बात का पता चला तो मैंने इसका मुख्य कारण ढूँढने का प्रयास किया। पता चला कि एक साल बटुक परमोचन के बाद वितस्ता नदी से वापिस घर जाते समय एक महिला अपनी नई विवाहिता बहू के साथ गली में फिसल गई थी। मिट्टी का घडा टूट गया और अखरोट बिखर गया। बर्फ के कारण फिसलन थी। फिर अखरोट जमा करके कपड़े में बांधकर उन्होंने घर पहुँचाया बडा अपशकुन माना गया। परन्तु दैववश वह वर्ष उनके लिए हर प्रकार से मंगलमय सिद्ध हुआ। उसी वर्ष उनके सभी मनोरथ पूरे हो गए। अतः वे समझने लगे कि यह सबकूछ होने का कारण घडे का फूटना ही था। इस प्रकार से यह प्रथा कायम हुई। मालूम नहीं कि विस्थापन के बाद वे कहाँ चले और इस रीति का उन्होंने क्या कर दिया? इसी प्रकार इस त्योहार के साथ व्यर्थ की रीतियाँ जुड गई हैं। इन सब को समाप्त करना समय की आवश्यकता है। नैवेद्यवितरण करना भी एक समस्या बन गई है। कुछ ऐसे घराने हैं जिनके युवा लोग दूर स्थानों में प्राइवेट सेक्टर में काम करते हैं। बड़ी कठनाई से वे दो या तीन दिन घर माता–पिता के पास आ सकते हैं। भला सोचिए कि बूढे लोग नैवेद्य वितरण का काम कैसे निभा सकेंगे। समाज के कार्य कर्ताओं और संत जनों को मिलकर कुछ रीति–रिवाजों में परिवर्तन लाना चाहिए। अखरोट नहीं मिल रहे हैं। तिस पर भी यदि हम गर्म स्थानों में अखरोटों को तीन दिन पानी में बिगोए रखें तो चौथे दिन वे खाने के योग्य ही नहीं रहेंगे। इन सब कठिनाइयों को दृष्टि में रखकर संत समुदाय और धर्म–पण्डितों को मिल बैठ कर इन कठिनाईयों के निवारण का उपाय ढूँढकर निर्देश देना चाहिए, जिस प्रकार गत वर्ष यज्ञोपवीत महोत्सव के विषय में निर्देश दिया गया और

जिस पर अमल भी प्रारम्भ हो चुका है।

अपने त्यौहारों का सामूहिक रूप से मनाने का प्रचलन भी शुरू हो चुका है, इसे प्रोत्साहन देना चाहिए। समस्त विशुद्ध प्रथाओं को हर प्रकार से कायम रखना चाहिए, ताकि कश्मीर के मूल निवासी कश्मीरी पण्डितों की वास्तविक कश्मीरियत बनी रहे, इस के लिए हम सब को मिल कर प्रयत्नशील रहना चाहिए, यही मेरी समाज से विनम्र प्रार्थना है।

हरि ॐ तत्सत्।

।। शंकरः शकरोतु नः ।।

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ

१. ऋग्वेद संहिता
२. यजुर्वेद संहिता
३. ब्रह्म वैवर्त पुराण
४. गरूड पुराण
५. श्रीमद् भग्वत गीता
६. Aspects of Kashmir Shavism by Dr Balji Nath Pandit
७. मानव – धर्म का मूल मंत्र – अहिंसा
८. शिवरात्रि पूजा विधि– ज्यो॰केशव भट्ट
९. शिवरात्रि पूजा विधि– ज्यो॰ प्रेम नाथ शास्त्री
१०. शिवरात्रि पूजा विधि– सतीसर फाउंडेशन
११. हेरथ–अरव जान डा॰ भूषण लाल कौल
१२. हरीहर कल्याण – कृष्णजू राजदान
१३. ज्ञान प्रकाश – परमानन्द
१४. याज्ञवल्क्य स्मृति
१५. शिव पुराण
१६. मनु स्मृति
१७. कल्याण – संस्कार अंक वर्ष २००७
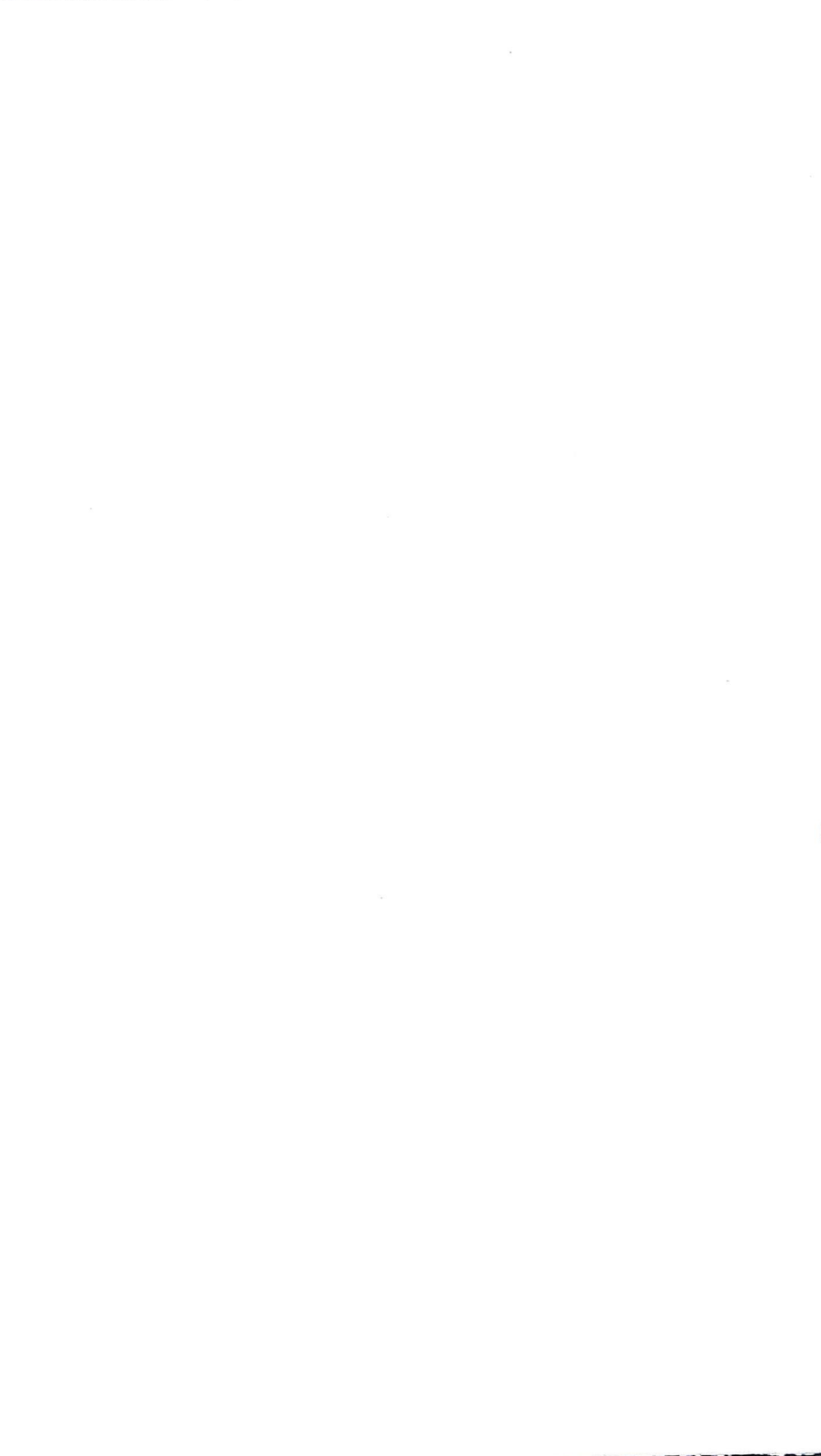
शारदा ग्रंथ माला के अन्तर्गत मुद्रित पुस्तकें

शारदा–गाव तीर्थ, अध्ययन केन्द्र	प्रो० भुषण लाल कौल
हेरथ– अंख जान	प्रो० भूषण लाल कौल
Kshemendra	श्री प्रदीप कौल खोडबली
उमानगरी	डॉ० महाराज कृष्ण 'भरत'
परमानन्द	डा० भूषण लाल कौल
कृष्णजू राजदान	प्रो० भूषण लाल कौल
Lalleshwari	डॉ० सी. एल. रेणा
Jonaraja	Dr. V.N. Drabu
Paraa Praaveeshika	Dr. R.L. Bhat

Printed at : M.K. Enterprises J.K. Colony, Paloura Top, Jammu # 94191-87685